International Journal on Science and Technology (IJSAT)
E-ISSN: 2229-7677 ● Website: www.ijsat.org ● Email: editor@ijsat.org

हिन्दी आलोचना का अध्ययन (१९८० से २०१० तक)

डॉ. विजय लक्ष्मी शर्मा

सहायक प्रोफेसर
हिंदी विभाग, सरकारी कॉलेज, धौलपुर (राजस्थान).

सार:
हिन्दी साहित्य में पत्र-पत्रिकाओं के विकास के साथ ही नई विधाओं का उदय हुआ। धीरे-धीरे कविता, कहानी, आलोचना में नवीन प्रयोग शुरू हुए। इसके साथ ही साहित्य में आलोचना की विश्वसनीयता पर अनेक सवाल खड़े हो रहे थे। ऐसे समय में आलोचना पर केंद्रित पत्रिका निकालना उससे भी जोखिम भरा कार्य था।उपनिवेशवाद की परिघटना का प्रभाव वैश्विक था, इसलिए इसकी प्रतिक्रिया में उत्पन्न होने वाला विमर्श भी अपने प्रभाव में वैश्विक होगा- केवल भौगोलिक दृष्टि से नहीं, बल्कि विभिन्न ज्ञानानुशासनों केपरिक्षेत्र की दृष्टि से भी। आलोचना साहित्य की कसौटी है, जो उसकी गुणवत्ता, मूल्य, मानवीय संवेदना और समाज कल्याण में उसके योगदान को निर्धारित करती है। हिंदी साहित्य में आलोचना की परंपरा रीति काल में शुरू हुई। केशवदास, चिंतामणि, भिखारीदास और नाभादास से होते हुए यह परंपरा आधुनिक हिंदी साहित्य में और अधिक परिष्कृत हुई। भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे अग्रदूत हिंदी आलोचना के विकास और विस्तार में आधार स्तंभ के रूप में खड़े हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रारंभिक चरण में, भारतेंदु एक सशक्त और तीक्ष्ण आलोचक, विचारक और संपादक के रूप में उभरे।

बीज शब्द: हिन्दी आलोचना, अध्ययन, हिन्दी साहित्य, रीति काल, सम्यक निरीक्षण, समीक्षा, द्विवेदी युग पुस्तकों

परिचय:

आलोचनाः अर्थ एवं परिभाषा

आलोचना शब्द का संयोजन आ+लो - चनम् से हुआ। लोचनम् लुच धातु से बना है, जिसका अर्थ है देखना| 'आ' प्रत्यय से शब्द संयोजित हुआ - आलोचना। 'आ' का अभिप्राय समन्नात, अतएव आलोचनम् का अर्थ - वस्तु या पदार्थ को चारों ओर से समग्रतः देखना । आलोचना के पर्यायवाची शब्द समीक्षा का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है 'सम्यक निरीक्षण' । आलोचना के पर्यायवाची शब्द हैं - समीक्षा, समालोचना, मीमांसा, अन्वेषण आदि। आरंभिक दौर में आलोचना को समीक्षा कहा जाता था जिसमें कृति के गुण - दोषों का वर्णन ही होता था उसका पूर्ण मूल्यांकन या निर्णय नहीं। किसी कृति या वस्तु की सम्यक व्याख्या, सम्यक मूल्यांकन व निष्पक्ष समीक्षा ही आलोचना है। कृति के संबंधे में बातचीत ही आलोचना है। [१]

विद्वानों ने आलोचना शब्द का निर्माण इसके सरल व सहज रूप के कारण अर्थ के आधार पर किया परन्तु उसकी सीमाएं निर्धारित नहीं की। जैसे - जैसे समाज, संस्कृति, सभ्यता, राजनीति व साहित्य में बदलाव आता गया आलोचना का स्वरूप, क्षेत्र बदलता गया और उसकी परिभाषा भी। भारतेन्दु व महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के आलोचकों की पुस्तकों के शीर्षकों से अनुमान लगाया जा सकता है वे समीक्षा शब्द का ही प्रयोग करते थे। उनकी समीक्षा में कृति के गुण - दोषों पर अधिक ध्यान रहता था, "हिंदी आलोचना के आरम्भिक युग में सामान्यतः यह धारणा प्रचलित थी कि आलोचना का अर्थ कृति विशेष का गुण - दोष विवेचन मात्र है।" समालोचना शब्द का प्रयोग द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी भी किया लेकिन आलोचना शब्द का प्रयोग बहुत बाद में रामविलास शर्मा व नगेन्द्र ने अपनी पुस्तकों शीर्षकों में किया। समय, परिस्थतियों तथा साहियित्क युगों के साथ - साथ आलोचना का स्वरूप बदलता गया और उसकी परिभाषाएं भी। [२]

हिंदी आलोचना का उदय भी भारतेंदु युग [१८५०-१९००] से ही माना जाता है। ब्रजभाषा में छिटपुट आलोचना के रूप तो मिलते हैं पर आलोचना के लिए गद्य का साहित्यिक भाषा के रूप में व्यवस्थित होना अनिवार्य था। खड़ी बोली के साहित्यिक गद्य-भाषा के रूप में व्यवस्थित होने की प्रक्रिया के साथ ही आलोचना विधा का जन्म हुआ। उस दौर में ब्रज के पुराने मूल्यों और राष्ट्र निर्माण की नयी परिस्थितियों के बीच एक रस्साकशी भी चल रही थी। शुरुआती आलोचना में 'देव बनाम बिहारी' विवाद जहां ब्रजभाषा के मूल्यों के प्रति झुकाव दिखाता है वहीं 'हिंदी नवरत्न' की बहस पुराने और नये काव्यमूल्यों में एक संगति खोजने का प्रयास है। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रीतिवाद विरोध, भाषा के व्यवस्थापन और आलोचना के कार्यभारों के निर्माण की बहस भी इस दौर की आलोचना का हिस्सा है। तासी व ग्रियर्सन सरीखे पश्चिमी विद्वानों द्वारा लिखे गए इतिहासों में भी आलोचना के सूत्र मौजूद थे जो भारतीय आरम्भिक आलोचकों को प्रभावित कर रहे थे। इस माड्यूल में विद्यार्थी आलोचना के उदय की परिस्थितियों से परिचित होने के साथ ही उन दबाओं और प्रेरणाओं पर बहस भी कर सकेंगे, जिनसे आलोचना का प्रारम्भिक स्वरूप दृढ़ हुआ। इस माड्यूल में विद्यार्थी पद्मसिंह शर्मा, मिश्र बंधु, महावीर प्रसाद द्विवेदी व अन्य आलोचकों के विषय में अध्ययन करेंगे। [३]

हिन्दी - आलोचना आज एक स्वतंत्र और समृद्ध गद्य विधा के रूप में स्वीकृत है। अन्य गद्यविधाओं की तरह 'आलोचना' का विकास भी आधुनिक काल में भारतेन्दु-युग से ही माना जाता है । इसका यह अर्थ नहीं कि भारतीय आचार्य काव्य-सौन्दर्य के विधायक तत्त्वों का निरूपण नहीं कर सके थे। वस्तुतः भारतीय आचार्यों ने काव्य के सौन्दर्य-विधायक तत्त्वों को लक्षित और परिभाषित करने के प्रयत्न में स्वतंत्र सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की थी । वे काव्य-शास्त्र निर्माता थे । कवि-विशेष या कृति-विशेष के रचना - सौष्ठव के विश्लेषण में उनकी रुचि नहीं थी। उन्होंने रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्तिं, औचित्य और ध्वनि सिद्धान्तों की मीमांसा करते हुए काव्य के बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य के आधारभूत तत्त्वों का स्वरूप निर्दिष्ट किया था। उनकी स्थापनायें आज भी प्रासंगिक हैं और हिन्दी - आलोचना ने अपने विकास के प्रत्येक चरण में उनसे प्रेरणा और शक्ति ग्रहण की है। आधुनिक काल से हिन्दी - आलोचना का आरम्भ

मानने का अर्थ यह है कि हिन्दी के साहित्य- मनीषियों में कवि-विशेष या कृति - विशेष का अध्ययन करने के बाद उसके महत्त्व और मूल्य का प्रतिपादन करते हुए स्वतंत्र रूप से प्रबंन्ध या निबन्ध लिखने की शुरुआत आधुनिक काल में की है । हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल का आरम्भ भारतेन्दु-युग से माना जाता है। अतः हिन्दी - आलोचना के स्वरूप को निर्दिष्ट करने के लिए हमें इसी युग से अपनी विचार - यात्रा आरम्भ करनी होगी ।

भारतेन्दु-युग में हिन्दी - आलोचना का आरम्भ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ, किन्तु आधुनिक आलोचना का उत्कृष्ट उदाहरण इस काल में नहीं मिलता । ' हिन्दी- प्रदीप' (१८७७-१९१०) ही एक ऐसा पत्र था जो अपेक्षाकृत गम्भीर आलोचनायें प्रकाशित करता था । पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षा के रूप में प्रकाशित होने वाली आलोचनाओं के अतिरिक्त इस युग में तीन प्रकार की आलोचनाओं का अस्तित्व भी स्वीकार किया जा सकता है-- [४-५]

१. रीतिकालीन लक्षण-ग्रन्थों की परम्परा में लिखित सैद्धान्तिक आलोचना
२. ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली गद्य में लिखी गयी टीकाओं के रूप में प्रचलित आलोचना
३. इतिहास-ग्रन्थों में कवि परिचय के रूप में लिखी गयी आलोचना ।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत पिंगल, अलंकार, रस, नाटक तथा सम्पूर्ण काव्यशास्त्र इन सभी विषयों पर लक्षण ग्रन्थों की रचना की गयी । उदाहरणस्वरूप ज्वालास्वरूप कृत 'रुद्र पिंगल' (१८६९), उमराव सिंह कृत छन्द महोदधि' (१८७८), जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' कृत 'छन्दः प्रभाकर' (१८९४) और जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' कृत 'घनाक्षरी-नियम- रत्नाकर' (१८९७) इस युग में रचित उल्लेखनीय पिंगल ग्रन्थ हैं। इसी प्रकार लछिराम कृत 'रावणेश्वर कल्पतरु' (१८९२) तथा मूरारिदान कविराज कृत 'जसवन्त जसो - भूषण' (१८९७) आलोच्य युग के महत्त्वपूर्ण अलंकार - ग्रन्थ हैं। रस-ग्रन्थों में कृष्ण लाल कृत 'रस सिन्धुविलास' (१८८३), साहब प्रसाद सिंह कृत 'रस- रहस्य' (१८८७) और प्रताप नारायण सिंह कृत 'रस कुसुमाकर' (१८९४) उल्लेखनीय हैं । 'रस कुसुमाकर' में लक्षण स्वच्छ खड़ी बोली गद्य में गए हैं | इसलिए रसशास्त्र के स्पष्ट और सुबोध ज्ञान के लिए यह ग्रंथ महत्त्व का है | सम्पूर्ण काव्यशास्त्र को दृष्टि में रख कर लिखे गए लक्षण ग्रन्थों में जानकी प्रसाद का 'काव्य सुधाकर' (१८८६) उल्लेखनीय है | नाट्यशास्त्र संम्बन्धी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति भारतेन्दु का 'नाटक' (१८८३) है| इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्राचीन नाट्यशास्त्र की जानकारी कराने के साथ ही युग-प्रवृत्ति का ध्यान रख क्र प्राचीन जटिल शास्त्रीय नियमों के छूट लेने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है | इन लक्षण-ग्रन्थों से दो महत्त्वपूर्ण बातें प्रकट होती हैं | एक तो ये इस बात के सूचक हैं कि किसी भी युग में शिक्षित जनता की मनोवृत्ति का प्रवाह समानान्तर कई धाराओं में हो सकता है - आलोच्य-युग में एक ओर जहाँ पत्र-पत्रिकाओं में व्यापक राष्ट्रिय हित एवं समाज-कल्याण को दृष्टि में रख कर पुस्तकों की समीक्षा की जा रही थी, वहीं दूसरी ओर रीतिकालीन मूल्यों में विश्वास करने वाले कुछ विद्वान् पिंगल, नायिका-भेद, रस-निरूपण एवं अलंकार-विवेचन में प्रवृत्त थे | दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह लक्षित करने की है कि समाज को प्रभावित करने वाली कुछ विकृतियों का उल्लेख क्र देने मात्र से काव्य-समीक्षा का स्तर ऊँचा नहीं उठता | जब तक शास्त्रीय सिद्धान्तों का

पुनराख्यान करके उनकी कसौटी पर नवीन कृतियों की गम्भीर एवं मार्मिक परख नहीं की जाती तब तक शास्त्रीय सिद्धान्तों की पुरानी परंपरा अलग घिसटती रहती है और सामान्य समीक्षा का प्रवाह अलग चलता रहता है | [६]

ब्रजभाषा गद्य में लिखे जाने वाली टीकाओं की परम्परा को आलोच्य युग के पूर्व तक सरदार कवि ने जीवित रखा | उनके द्वारा रचित 'कवि प्रिया', 'रसिक प्रिया' और 'बिहारी सतसई' की टीकाएँ अधिक लोकप्रिय हुई थीं | आलोच्य-युग में 'बिहारी सतसई' पर लल्लू लाल जी की टिका 'बालचन्द्रिका' (१८१९) का संशोधन करके दुर्गादत्त कवि ने सन १८६४ में और पुनः ग्रियर्सन ने १८९६ में प्रकाशित कराया | यह टिका ब्रजभाषा-प्रभावित खड़ी-बोली गद्य में थी प्रभुदयाल पाण्डेय ने भी १८९६ ई० में खड़ी बोली गद्य में 'बिहारी सतसई' की अच्छी टिका लिखी थी | इन टीकाओं में कहीं-कहीं उत्तम एवं सूक्ष्म काव्य-गुणों का संकेत मिल जाता है | इसलिए टिका-पद्धति की व्याख्या को भी एक प्रकार की आलोचना कहा जा सकता है | आलोच्य-युग में दो इतिहास ग्रन्थ भी लिखे गये -- शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' (१८७८) और जार्ज ग्रियर्सन कृत 'डी माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर और नार्दर्न हिंदुस्तान' (१८८९) | इनमें से शिवसिंह सेंगर की आलोचना-पद्धति में प्रशंसात्मक उक्तियों की बहुलता है | उदाहरण के लिए 'देव'. कवि के संबन्ध में सरोजकर ने लिखा है 'शब्दों में ऐसी समायी कहाँ कि उनमें इनकी प्रशंसा की जाय |' इस प्रकार के वाक्यों के अतिरिक्त जो कुछ कहा गया है वह सब प्रायः सुचना मात्र है | ग्रियर्सन ने अवश्य कुछ कहने की चेष्टा की है | उनमें समीक्षा-दृष्टि का आभास मिलता है | तुलसीदास के संबन्ध में विचार करते हुए उन्होंने इनके वस्तु-वर्णन की स्वाभाविकता की सराहा है | पात्रों के वार्तालाप के लालित्य की डैड दी है और उनके भाषाधिकार की प्रशंसा की है | किन्तु उनकी यह दृष्टि जायसी, सूर और तुलसी जैसे कुछ थोड़े से कवियों के परिचय में ही लक्षित होती है | सामान्यतः उन्होंने एक इतिहासकार की भूमिका अदा करते हुए कवियों और लेखकों का वृत्त ही प्रस्तुत किया है | अतः आलोच्य-युग के इतिहास-ग्रन्थों में दिये गए कवि-परिचयों में आलोचना के तत्व नहीं के बराबर है |

आधुनिक काल में आलोचना का विकास

इस काल में भी हिन्दी आलोचना का समुचित विकास देखने को मिलता है | इस कल की आलोचना की खास बात यह है की इस काल में रीति कालीन आलोचना पद्धति से निकल क्र एक नए मार्ग की ओर प्रशस्त होती दिखाई देती है | इसके मुख्य कारण गद्य का आविर्भाव, पत्रपत्रिकाओं का प्रचलन, पाश्चात्य समिक्षाजगत से सम्पर्क, तथा पाठकों में चेतना का विकास हो सकता है | इस काल की आलोचना को निम्न लिखित उपभागों में बांटा जा सकता है -

१. **भारतेन्दु युग**
२. **द्विवेदी युग,**
३. **शुक्ल युग**
४. **शुक्लोत्तरयुग |**

१. भारतेन्दु युग

इस युग से ही कुछ विद्वान् हिन्दी आलोचना का विकास मानते है | इस युग में सैद्धान्तिक आलोचना के साथ व्यवहारिक आलोचना के भी दर्शन होते है | सिद्धान्तिक आलोचना में भारतेन्दु का नाटक सबसे पहले गिनने योग्य है | इस ग्रंथ में नाटक से संबन्धित चर्चा की गई है | इसके उपरांत हिंदी सिद्धान्तिक आलोचना के विकास में जिनका महत्त्व पूर्ण योगदान रहा उनका उल्लेख करना आवश्यक है जगन्नाथ प्रसाद भानु, गंगा प्रसाद, अग्निहोत्री, साहब प्रसाद सिंह, बिहारी लाल जगन्नाथ प्रभाकर आदि के नाम मुख्य है |

नगरी प्रचारिणी सभा पत्रिका के माध्यम से अनेक साहित्यकारों के जीवन, रचना प्रमाणिकता आदि के विषय में अनेक व्यावहारिक समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाश में आए | शिव सिंह सेंगर की रचना शिवसिंह सरोज इसी व्यवहारिक आलोचना का प्रारम्भिक रूप है | कुछ पत्र पत्रिकाओं ने भी इस युग में आलोचना में महत्त्वपूर्ण योग दान दिया | बद्रीनारायण प्रेमघन ने हिन्दी प्रदीप तथा आनन्द कादम्बिनी नामक पत्रों में श्रीनिवास कृत संयोगिता स्वयंवर, तथा बंग विजेता की विस्तृत समीक्षा की |

२. द्विवेदी युग

सन १९०० में हिन्दी पत्रिका सरस्वति का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ | आचार्य महावीर प्रसाद के सम्पादन में पर्याप्त आलोचना हुई | इसमें पुस्तक समीक्षा नामक एक स्तम्भ रखा गया, और स्वयं पुस्तकों की समीक्षा प्रारम्भ की | बनारस से प्रकाशित सुदर्शन तथा जयपुर से प्रकाशित समलोचक पत्र में भी अनेक रचनाओं की समीक्षा की गई | द्विवेदी युग में हिन्दी आलोचना के मुख्यतः निम्न लिखित रूप दिखाई देते है |

क. शास्त्रीय आलोचना के अंतर्गत जगन्नाथ भानुकी रचना काव्य प्रभाकर छंद सरावली तथा लाला भगवान दीन की रचना अलंकार मंजूषा मुख्य है |

ख. तुलनात्मक आलोचना के लिए द्विवेदी कल को उद्भव कल कहा जा सकता है | हिंदी में तुलनात्मक आलोचना का श्रीगणेश पदम् सिंह शर्मा द्वारा मन जाता है | मिश्र बंधुओं ने हिन्दी नवरत्न के प्रकाशन के माध्यम से तुलनात्मक आलोचना का विकास किया |

ग. परिचयात्मक आलोचना-स्वयं आचार्य द्विवेदी ने अपने पत्र सरस्वती में परिचयात्मक आलोचना लिखी आचार्य द्विवेदी निडर आलोचक थे तथा किसी भी कृति में स्पष्ट रूप से पक्षपात के बिना ३ दोष निकल क्र सामने ले आते थे | उनकी आलोचना में खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति साफ दिखाई देती है |

घ व्याख्यात्मक आलोचना

बालकृष्ण भट्ट् ने हिन्दी प्रदीप पत्र में नीलदेवी, परीक्षागुरू, संयोगिता स्वयंवर की व्याख्यात्मक आलोचना करके इसका विकास किया | बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी बंगवासीपत्र में अश्रुमतिनाटक, की व्याख्यात्मक आलोचना की | किशोरी लाल गोस्वामी कृत उपन्यास तारा की व्याख्यात्मक समीक्षा अमलोचक पत्र में तथा श्रीनिवास कृत परीक्षागुरू की समीक्षा छत्तीसगढ़ मित्र में प्रकाशित हुई |

३ शुक्ल युग

हिन्दी आलोचना में शुक्ल युग को सबसे बेहतर युग मन जाता है | आचार्य शुक्ल ने द्विवेदी योग में ही आलोचना जगत में आए, परन्तु अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण हिन्दी के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच क्र हिन्दी अलोचना को वैज्ञानिकता प्रदान की | हिन्दी आलोचना के इस कल को उसके उत्थान का तृतीयकाल कहा है | उन्होंने लिखा है कि-तृतीय उत्थान में सकमलोचना का आदर्श भी बदला, गुण-दोष के कथन के आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और अन्तः प्रवृत्तियों की छानबीन की ओर भी ध्यान दिया गया |
आचार्य शुक्ल के समय में प्रचलित द्विवेदी-युगीन नैतिकता और इतिवृत्तात्मकता के विरोध में छायावाद का उदय हो चूका था | नए युग और नई प्रवृत्ति के लिए नए प्रकार की आलोचना की आवश्यकता थी | इस समय अब नवीन काव्य एवं अन्य साहित्य के लिए पुराणी काव्यशास्त्रीय पद्धति पर मूल्यांकन करना सम्भव नहीं था | आचार्य शुक्ल ने आलोचना की बागडोर अपने हाथ में लेकर आलोचना का केंद्र हिन्दी के भक्तिकाल को बना दिया, तथा स्वयं तुलसी, सूरदास, व जायसी पर विस्तृत समीक्षाएं लिखीं | कविता में अनुभूति को प्रधानता प्रदान की | इस कल में शुक्ल कालीन हिन्दी आलोचना का अवलोकन दो भागों में बांट कर किया जा सकता है |

आधुनिक युग

शुक्ल युग के उपरान्त आधुनिक युग का क्रम आता है | इसकाल के प्रमुख आलोचकों में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. राम विलास शर्मा, डॉ. देवराज, डॉ. देवराज उपाध्याय, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. सत्येन्द्र आदि का नाम विशेष उल्लेख्य है | इनमें आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के ग्रंथ - आधुनिक साहित्य, नयासाहित्य, नए प्रश्न, कवि निरला, आदि में छायावादी काव्य की नूतन कल्पना छवियों, भावों बी भाषारूपों की समालोचना की |
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ हिंदी-साहित्य की भूमिका में आलोचना के नए प्रतिमान स्थापित किए | सुरसहित्य में उनकी छायावादी भावुकता का प्राधान्य दिखाई देता है | कबीर में उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण का प्रायोगिक रूप स्पष्ट दिखाई देता है | [७]

साहित्य की समीक्षा:

भारतीय बुद्धिजीवी औपनिवेशिक दबाव का कितना सटीक और गंभीर विश्लेषण कर पा रहे थे यह इस उद्धरण से स्पष्ट है- “अंग्रेज तीन प्रकार की लड़ाई जीत कर निर्विघ्न राज कर रहे हैं। इनमें पहले युद्ध को हम बाहु-युद्ध कह सकते हैं। राजनीति के कुटिल कौशल से तथा नए-नए अस्त्र-शस्त्र के फल से अंग्रेजों ने इस देश पर जो अधिकार जमाया है, वह इसी युद्ध का फल है। अंग्रेजों के इस देश में पधारने के बाद से ही भारतवासियों को एक नए युद्ध का परिचय मिलने लग गया है। इस युद्ध में वे अपना धन-बल खो बैठे हैं। पाठक समझ गये होंगे कि हम ‘वाणिज्य-युद्ध’ की बात कर रहे हैं। रेल, तार, जहाज़ और बिना लगाम की वाणिज्य-नीति, यही इस लड़ाई के प्रधान शस्त्र हैं। प्रबल राजशक्ति से सहायता पाए हुए गोरे बनिए इस लड़ाई के योद्धा हैं। दुर्बल भारतवासियों का धन लूटना और भारतीय शिल्प वाणिज्य का नाश करना इस युद्ध का प्रधान उद्देश्य है। इसी युद्ध में दिन-दिन हमारा धन-बल कम हुआ जाता है।

अकाल हमारा रोज़ का साथी हो गया है। अस्थि-पिंजर देश भर में भर गये हैं।"[८] यह उद्धरण सखाराम गणेश देउस्कर की १९०४ में प्रकाशित कृति 'देशेर कथा' के हिंदी अनुवाद से लिया गया है।
बुद्धि-बल से तो मनुष्य बहुतेरी असाध्य बातों को साध सकता है। इस युद्ध से पराधीन जाति का मनरूपी खेत, जीतने वाले के हाथों में पूरी तरह चला जाता है। अति दुर्बल जाति में मति-भ्रम उत्पन्न करने और मन की दृढ़ता का नाश करने का बड़े-बड़े राजनीति-विशारदों के मत से यही संग्राम अमोघ अस्त्र है। अंग्रेजों के चलाये इस नए युद्ध के फल से भारतवासियों की चिंता-तरंगिणी अंग्रेजों की दिखाई राह पर बहने लगी, स्वदेश, स्वसमाज और स्वकीय पूर्वपुरुषों पर से लोगों की भक्ति श्रद्धा नष्ट होने और परदेशी सभी बातें हितकर मालूम होने लगीं। इस अवस्था में जो लोग स्वभावतः परदुःख कातर थे, वे बुद्धि-भ्रंश के घोर आवर्तन में पड़कर भारतीय समाज का आमूल संस्कार कर उसे फिर से पाश्चात्य आदर्श पर गढ़ने का दृढ संकल्प कर बैठे-इसी में उन सज्जनों ने अपनी विशाल बुद्धि और अमूल्य समय खर्च कर डाला" [९]।

उद्देश्य:

- आधुनिक काल में आलोचना का विकास
- हिन्दी आलोचना का अध्ययन
- हिंदी आलोचना का ऐतिहासिक संदर्भ

अनुसंधान क्रियाविधि:

यह अध्ययन अन्वेषणात्मक प्रकृति का है। इस शोध पत्र को तैयार करने में प्रयुक्त आँकड़े द्वितीयक प्रकृति के हैं, जिन्हें विभिन्न प्रकाशित स्रोतों से एकत्र किया गया है। इस शोध पत्र को तैयार करने के लिए प्राप्त आँकड़े विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं और प्रासंगिक वेबसाइटों से लिए गए हैं।

परिणाम और चर्चा:

हिंदी आलोचना का ऐतिहासिक संदर्भ

हिंदी आलोचना का इतिहास रीतिकाल (काव्य-रूढ़ियों के युग) से ठीक पहले के काल में खोजा जा सकता है। रीतिकाल की विशेषता काव्य-रूढ़ियों और विशिष्ट साहित्यिक युक्तियों के प्रयोग पर केंद्रित थी। इस काल में, साहित्यिक आलोचना मुख्यतः काव्यात्मक रूपों के माध्यम से की जाती थी, जो हमेशा गहन विश्लेषण के लिए उपयुक्त नहीं थे।

विकास के चरण

हिंदी आलोचना को तीन मुख्य चरणों में विभाजित किया जा सकता है:
भारतेंदु-पूर्व युग: इस काल में रीतिकाल से प्रभावित आलोचना का उदय हुआ, जहाँ साहित्यिक मूल्यांकन मुख्यतः काव्यात्मक रूढ़ियों पर आधारित था।
भारतेंदु युग: आधुनिक हिंदी साहित्य के आरंभ को चिह्नित करते हुए, इस काल में गद्य लेखन का आगमन हुआ। मुद्रण यंत्र के आविष्कार ने साहित्य के प्रसार को सुगम बनाया, जिससे राजनीतिक

जागरूकता में वृद्धि हुई और अनेक साहित्यिक कृतियों का प्रकाशन हुआ। इस युग ने साहित्यिक आलोचना के प्रति अधिक संरचित दृष्टिकोण की नींव रखी। [१०]

द्विवेदी युग: आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव में, हिंदी आलोचना ने अधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना शुरू किया। द्विवेदी ने साहित्यिक मूल्यांकन में तार्किक तर्क के महत्व पर बल दिया, जो केवल प्रशंसा या निंदा से आगे बढ़ता था।

आधुनिक काल का काल विभाजन हिंदी साहित्य के काल विभाजन के तालिका में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल के बाद के काल का वर्गीकरण के रूप में हुआ है एवं इन तीनों कालों (आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल) से सबसे अधिक भिन्नता आधुनिक काल में देखने को मिलती है। जैसे- आदिकाल में डिंगल भाषा का प्रयोग, भक्तिकाल में अवधी भाषा तथा रीतिकाल में ब्रजभाषा की वर्चस्व रही। लेकिन आधुनिक काल तक आते-आते खड़ी बोली की प्रधानता हमें देखने को मिलती है।

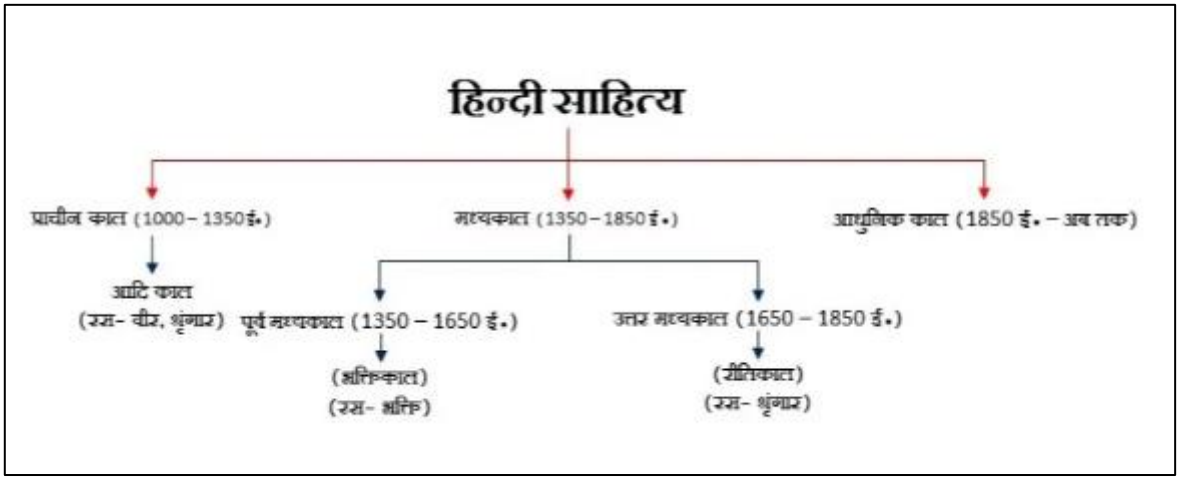

चित्र १: हिंदी साहित्य

पूर्व के तीनों कालों में जहां पद्य साहित्य का विकास देखने को मिलता है वहीं आधुनिक काल में गद्य और पद्य का समान रूप से विकास हमें देखने को मिलता है। इस काल में हिंदी साहित्य का चहुँमुखी विकास हमें देखने को मिलता है। इस काल में धर्म, दर्शन, कला एवं साहित्य के प्रति नए दृष्टिकोण का अविर्भाव हुआ।

पूर्व में कवियों का दृष्टिकोण एक सीमित क्षेत्र तक सीमित था वहीं आधुनिक काल में कवियों ने समाज के व्यावहारिक पक्ष के हर एक पहलुओं का व्यापक चित्रण किया। इस समय के काव्य की प्रवृत्तियां राजनीतिक चेतना एवं सामाजिक सुधारवाद की भावना सेओत-प्रोत थी। [११]

आधुनिक काल का विभाजन

आधुनिक काल को इसकी साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर छः प्रमुख भागों में बांटा जाता है: -

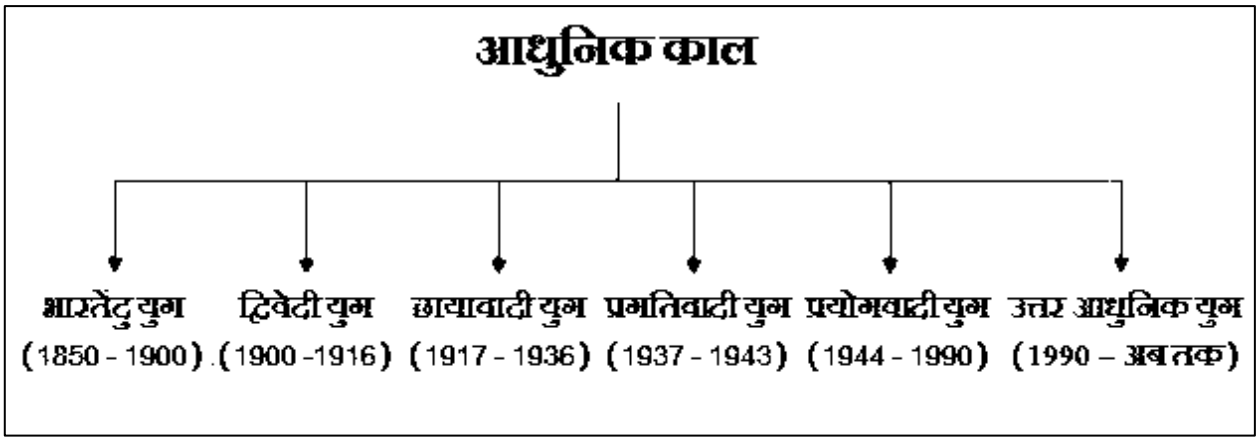

चित्र २: आधुनिक काल

यद्यपि आधुनिक काल का प्रारंभ विक्रम संवत १९०० (१८४३ ई॰) से माना जाता है। लेकिन शुरू के २५ वर्ष की कविता को संक्रांति युग की कविता कहा जा सकता है क्योंकि इस काल में रीति युगीन शृंगारिक तथा भारतेंदु युगीन प्रवृत्तियों का समन्वय देखने को मिलता है। [१२-१३]

निष्कर्ष:

१९८० के बाद विश्व परिदृश्य में तेजी से बदलाव हुए। राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों के साथ - साथ सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिवर्तन हुए। विकास तथा आधुनिकता हवाला देकर आमजन को हाशिए पर धकेला जाने लगा। भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण के चलते उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हुआ। स्त्री का वस्तुकरण हुआ, दलित पर हमले बढ़े। आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का पंजा चलने लगा, किसानों की जमीनें छीनकर उन्हें बेदखल होने पर मजबूर किया गया। बाजार के बढ़ते प्रभाव ने उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया, जिसने मनुष्य को मशीन में तब्दील कर दिया। विकास की भूखी दौड़ में पर्यावरण का अत्यधिक ह्रास किया गया। धर्म तथा राष्ट्रवाद की आड़ में साम्प्रदायिकता का विस्तार हुआ। ये सभी मुद्दे विमर्श के केंद्र में आए जिसने साहित्य को प्रभावित किया। अपने समय के साहित्य की नब्ज पहचानते हुए आलोचकों ने बेबाक तरीके से अपनी राय रखी। स्त्री, दलित, आदिवासी, किसान के पक्ष में खड़ी होकर आलोचना ने बाजारवाद तथा साम्प्रदायिकता का डटकर विरोध किया तो पर्यावरण हास के प्रति चिंता जाहिर की।

हिंदी आलोचना का विकास साहित्य और समाज के बीच गतिशील अंतर्संबंध का प्रमाण है। काव्य-परंपराओं में अपनी प्रारंभिक जड़ों से लेकर एक संरचित अध्ययन क्षेत्र के रूप में अपनी वर्तमान स्थिति तक, हिंदी आलोचना का महत्वपूर्ण विकास हुआ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे प्रमुख व्यक्तियों ने इस विकास को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे यह सुनिश्चित हुआ है कि हिंदी साहित्य अपने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों के साथ आलोचनात्मक रूप से जुड़ा रहे। जैसे-जैसे हम हिंदी आलोचना के विभिन्न चरणों का अन्वेषण करते हैं, साहित्य और उसके आलोचकों के बीच चल रहे संवाद को पहचानना आवश्यक है, जो दोनों के बारे में हमारी समझ को समृद्ध करता है।

संदर्भ:

१. निर्मला जैन, हिंदी आलोचना का दूसरा पाठ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-१३
२. समालोचक, फरवरी १९५८, विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड, आगरा, उत्तर प्रदेश, मुख पृष्ठ
३. समालोचक, फरवरी १९५८, पृष्ठ-३
४. समालोचक, फरवरी १९५८, पृष्ठ-३
५. समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून २०१३, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ-१०५
६. 'देवीशंकर अवस्थी, आलोचना का द्वन्द्व, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ ७९
७. 'कमला प्रसाद, रचना और आलोचना की द्वन्द्वात्मकता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. की भूमिका से
८. देउस्कर, सखाराम गणेश, देशेर कथा, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, १९०४, पृष्ठ-१४५
९. कृष्ण, प्रणय, उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-१२५
१०. नामवर सिंह, आलोचना और विचारधारा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ १४३
११. 'कुंवरपाल सिंह (सम्पादक), साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद, पिपुल्स लिटरेसी, दिल्ली, पृष्ठ - १४
१२. डा. रतन कुमार पाण्डेय, आलोचक और आलोचना सिद्धांत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, भूमिका से
१३. विश्वनाथ त्रिपाठी हिन्दी आलोचना ५९७ मधुरेश हिन्दी आलोचना का विकास पृ१४३ डॉ अमर नाथ हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली पृ १४८.